... लेकिन अवाम का इंसाफ अभी बाकी है

पिछले दिनों उच्चतम न्यायालय ने राजधानी दिल्ली को प्रदूषण मुक्त करने का अपना अभियान आगे बढ़ाते हुए यह आदेश दिया कि 'मास्टर प्लान' के अनुसार 'नॉन-कनफर्मिंग' क्षेत्र में आने वाली तमाम औद्योगिक इकाइयों को अविलम्ब बन्द कर दिया जाये क्योंकि इनसे दिल्ली की आबो-हवा में जहर फैल रहा है। आदेश आने के बाद अदालत, केन्द्र सरकार और दिल्ली सरकार के बीच खींचतान सिर्फ इस बात पर होती रही है कि आदेश को अमल में लाने के लिए कितना समय दिया जाये, 'नोडल एजेंसी' (आदेश को अमल में लाने की निगरानी रखने वाली एजेंसी) केन्द्रीय शहरी विकास मंत्रालय बने या दिल्ली सरकार। लेकिन, एक सवाल पर सभी चुप थे कि इस आदेश के अमल में आने से लगभग एक लाख छोटे कारखानों में काम करने वाले लगभग 25 लाख मजदूरों की रोजी-रोटी का क्या होगा? दिल्ली से लेकर यू.पी., बिहार और दूसरे राज्यों में रहने वाले लगभग एक करोड़ लोगों की जिन्दगियों का क्या होगा जो इन मजदूरों पर निर्भर हैं?

इन सवालों पर चुप रहना ही आज हुकूमत के लिए सुविधाजनक है। दिल्ली प्रदेश की सियासत करने वाली दो प्रमुख चुनावी पार्टियों—सत्ताधारी कांग्रेस और प्रमुख विपक्षी दल भा.ज.पा. के लिए करोड़ों लोगों की जिन्दगी का सवाल अगर मुद्दा बना भी तो सिर्फ इस बात के लिए कि कैसे यह बला दूसरे पर टाली जाये। बाकी सभी विपक्षी पार्टियां इस मुद्दे पर या तो बिल्कुल चुप रहीं या अखबारी बयानबाजी करके चुप लगा गयीं। यह चुप्पी एक साजिश है करोड़ों लोगों के जीने के हक के खिलाफ, और इस साजिश में पिछले एक दशक से न्यायपालिका सबसे अहम रोल निभा रही है।

देश में भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया शुरू होने के साथ ही "न्यायिक सक्रियता" के नाम पर देश की न्यायपालिका जो भूमिका निभाती चली आ रही है, उसके आधार पर अब यह भ्रम तो खत्म ही हो जाना चाहिए कि बहुसंख्यक मेहनतकश जनता की लूट और शोषण पर टिके किसी समाज में न्यायपालिका निष्पक्ष हो सकती है। पिछले एक दशक में उच्चतम न्यायालय और राज्यों के उच्च न्यायालयों ने जो फैसले सुनाये हैं, वे खुल्लमखुल्ला देश के बड़े पूंजीपति घरानों और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का हित साधने वाले घोर जनविरोधी फैसले रहे हैं। इन फैसलों में कैपिटेशन फीस को जायज ठहराया जा चुका है, सरकार की नीतियों के विरोध में आयोजित होने वाली हड़तालों-बन्द आदि को गैर कानूनी ठहराया जा चुका है, मेरिट को वरीयता देने वाले फैसले में प्रकारान्तर से समाज के अन्दर 'सर्वाइवल ऑफ दि फिटेस्ट' (यानी सामाजिक डार्विनवाद) के घोर मानवविरोधी सिद्धान्त को जायज ठहराया जा चुका है, आदि। पिछली डाक हड़ताल (जनवरी 2001) के दौरान "न्यायिक सक्रियता" की हड़ताल तोड़क भूमिका नग्न रूप में सामने आ चुकी है। दिलचस्प बात यह है कि ये तमाम जनविरोधी फैसले संविधान द्वारा दिये जनता के मौलिक अधिकारों की सुरक्षा के नाम पर सुनाये गये हैं। इससे, यह बात भी साबित होती है कि हमारे देश के संविधान में उल्लिखित मौलिक अधिकारों की इतनी व्यापक और लचीली परिभाषाएं हैं कि जब चाहे उन्हें शासक वर्ग के हितों के अनुसार व्याख्यायित किया जा सकता है। इस तरह का आचरण चाहे वह न्यायपालिका करे या कार्यपालिका या विधायिका सब कुछ संविधानसम्मत ही होता है। ठीक वैसे ही, जैसे देश की आन्तरिक सुरक्षा के नाम पर 1975 में इन्दिरा गांधी ने जनता के तमाम मौलिक अधिकारों को हड़प लिया था। उनका यह कृत्य भी कतई असंवैधानिक नहीं था।

अपनी ओर से

ठीक उसी तरह दिल्ली को प्रदूषण-मुक्त करने के नाम पर लाखों लोगों को बेघर-बदर किया जा रहा है—बिल्कुल संविधानसम्मत ढंग से। प्रदूषण मुक्ति की इस चिन्तातुरता में इस सवाल पर ध्यान देने की किसी को फुरसत नहीं है कि दिल्ली के प्रदूषण के लिए आखिरकार जिम्मेदार कौन है? खुद केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के आंकड़े बताते हैं कि दिल्ली के वायु प्रदूषण में मोटर गाड़ियों द्वारा उगले जा रहे धुएं का हिस्सा 64 प्रतिशत है। सच्चाई यह भी है कि दिल्ली के जल प्रदूषण में करीब 64 प्रतिशत सीवर से होता है और दिल्ली की 70 प्रतिशत गरीब आबादी को सीवर ही उपलब्ध नहीं है। सरकारी आंकड़ों के ही मुताबिक

उद्योगों से होने वाले कुल जल प्रदूषण का आधा सिर्फ 45 बड़ी और मंझोली औद्योगिक इकाइयों से होता है। वैसे यह मान भी लिया जाये कि "प्रदूषण फैलाने" के लिए मुख्यत: छोटे उद्योग ही जिम्मेदार हैं तो क्या यह सवाल नहीं पूछा जाना चाहिए कि अब तक केन्द्र सरकारें, राज्य सरकारें, पर्यावरण मंत्रालयों, प्रदूषण नियंत्रण बोर्डों और अनेक गैर सरकारी संस्थानों की नाक के नीचे ये गुनहगार फैक्टरियां कैसे लगती और चलती रहती हैं? इसका जिम्मेदार किसे ठहराया जाये?

लेकिन, हमारी न्यायपालिका अन्धी नहीं है। बात यह है कि वह सिर्फ शासक वर्गों के लिए सुविधाजनक सच्चाइयों को ही देखना पसन्द करती है। वैसे भी हमारी कानूनी प्रक्रिया में मुजरिम वह नहीं होता जो जुर्म करता है बल्कि वह होता है जिस पर जुर्म साबित किया जा सकता है। इसी कानूनी प्रक्रिया का अमल करते हुए प्रदूषण फैलाने का जुर्म साबित कर दिया गया और सजा दे दी गयी।

पिछले एक दशक में उच्चतम न्यायालय और राज्यों के उच्च न्यायालयों ने जो फैसले सुनाये हैं, वे खुल्लमखुल्ला देश के बड़े पूंजीपति घरानों और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का हित साधने वाले घोर जनविरोधी फैसले रहे हैं। इन फैसलों में कैपिटेशन फीस को जायज ठहराया जा चुका है, सरकार की नीतियों के विरोध में आयोजित होने वाली हड़तालों-बन्द आदि को गैर कानूनी घोषित किया जा चुका है, मेरिट को वरीयता देने वाले फैसले में प्रकारान्तर से समाज के अन्दर 'सर्वाइवल ऑफ दि फिटेस्ट' (यानी सामाजिक डार्विनवाद) के घोर मानवविरोधी सिद्धान्त को जायज ठहराया जा चुका है...

अपनी सुख-सुविधा और मुनाफे के लिए जमीन-पानी-बिजली का बेहिसाब-बेरोकटोक इस्तेमाल करने वाले पूंजीवादी कुलीनों पर, एक-एक परिवार में कई-कई गाड़ियों से धुआं उड़ाने वाले अमीरजादों पर कोई रोक-टोक नहीं, लेकिन बन्दी की तलवार गिराई जा रही है लघु उद्योगों पर और कलम के एक झटके से 25 लाख से ज्यादा मजदूरों को धक्के मारकर सड़कों पर फेंक देने का इन्तजाम मुकम्मल कर दिया गया है।

हर दिन बीतने के साथ देश की "पवित्र" न्यायपालिका, पूंजी और कार्यपालिका का अपवित्र गंठजोड़ अधिक से अधिक नंगा होता जा रहा है। 1996 में जब प्रदूषण मुक्ति के नाम पर 168 कारखानों के हजारों मजदूरों को पहली बार उजाड़ा गया था तो उन्हें उच्चतम न्यायालय ने 6 साल से लेकर एक साल तक का वेतन मुआवजे और ट्रांसफर बोनस के रूप में देने का निर्देश कारखाना मालिकों को दिया था। यह अलग बात है कि करीब 90 प्रतिशत मजदूरों को आज चार साल बीत जाने के बाद भी मुआवजा नहीं मिल सका। लेकिन इस बार न्यायालय ने मजदूरों की चिन्ता करने का ढोंग भी करने की जरूरत नहीं समझी है। इस बार तो **न्यायालय ने फैसले में यह कहा है कि कुछ लोगों का स्वास्थ्य बचाना लाखों लोगों के रोजगार से ज्यादा जरूरी है। इतना ही नहीं विद्वान न्यायाधीशों ने यहां तक कहा कि "मजदूर तो घुमन्तू प्रवृत्ति के होते हैं, कहीं भी जाकर काम कर लेंगे।" इससे भी आगे, अपनी रोजी-रोटी बचाने के लिए सड़कों पर उतरे मजदूरों के विरोध को न्यायालय ने "गुण्डों" के आन्दोलन की संज्ञा दे डाली।**

देशी-विदेशी पूंजी की खुली लूट के इस दौर में न्यायपालिका ने भी खुल्लमखुल्ला ऐलान कर दिया है कि वह सिर्फ लुटेरों की नजर से सच्चाइयों को देखना पसन्द करती है और उन्हीं की नजर से इंसाफ करती है। लेकिन शायद यह अपवित्र गंठजोड़ इतिहास की इस सच्चाई को भी जानबूझकर देखना नहीं चाहता कि दुनिया की जनता ने भी इंसाफ किये हैं, अपने फैसले सुनाये हैं।.. और हमारे देश की जनता का फैसला भी अभी बाकी है।... हम धीरे-धीरे उसी दिन की ओर बढ़ते जा रहे हैं।

"कानून की पवित्रता तभी तक रखी जा सकती है जब तक वह जनता के दिल यानी भावनाओं को प्रकट करता है। जब यह शोषणकारी समूह के हाथों में एक पुर्जा बन जाता है तब अपनी पवित्रता और महत्व खो बैठता है... ज्यों ही कानून सामाजिक आवश्यकताओं को पूरा करना बन्द कर देता है त्यों ही जुल्म और अन्याय को बढ़ाने का हथियार बन जाता है। ऐसे कानूनों को जारी रखना सामूहिक हितों पर विशेष हितों की लाभपूर्ण जबरदस्ती के सिवाय कुछ नहीं है।"

(भगतसिंह सहित छह क्रान्तिकारियों द्वारा लाहौर साजिश केस की सुनवाई कर रहे विशेष ट्रिब्यूनल के कमिशनर को लिखे पत्र से)